शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 फरवरी 2014

गोस्वामी तुलसीदास और प्रगतिशील आलोचना
विशेष संदर्भ: डॉ.रामविलास शर्मा

सुश्री प्रेमवती
सहायक प्रध्यापक (तदर्थ),
गुरु गोविन्द सिंह कॉलेज आफ कॉमर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

शोध संक्षेप

गोस्वामी तुलसीदास मध्यकाल के सर्वप्रमुख भक्त कवि थे। आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी भक्ति भावना और काव्य प्रतिभा का स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की तुलसी सम्बन्धी आलोचना का विकासात्मक स्वरूप हमें रामविलास शर्मा की आलोचना में दिखाई देता है। डॉ.रामविलास शर्मा ने तुलसी काव्य के सामाजिक पहलुओं का सार्थक ढंग से ऐतिहासिक संदर्भ में विश्लेषण किया और तुलसी साहित्य के नए पहलुओं से अवगत कराया। हमारे इस शोध पत्र का उद्देश्य डॉ.रामविलास शर्मा द्वारा गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन का अध्ययन करना है।

प्रस्तावना

गोस्वामी तुलसीदास अपने समय के बड़े प्रसिद्ध कवि थे। इसीलिए तुलसीदास की प्रतिष्ठा अत्यन्त लोकप्रिय कवि के रूप में शताब्दियों पूर्व हो चुकी थी। परन्तु आधुनिक काल में तुलसीदास की काव्य-प्रतिभा और उनके भक्त-रूप को उजागर कर हमारे समक्ष प्रस्तुत करने में आधुनिक आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का सर्वप्रमुख स्थान है। व्यवस्थित ढंग से आलोचना विद्या का विकास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल से ही माना जाता है। क्योंकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना के क्षेत्र में पहली बार आलोचना करने के लिए नए-नए मानदण्ड निर्मित किए। उनके मानदण्ड का आधार था 'लोकमंगल की भावना' और काव्य में 'आनन्द की साधनावस्था'। पहली बार आचार्य शुक्ल 'लोकमंगल' की कसौटी पर 'तुलसी-साहित्य' का मूल्यांकन करते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार साहित्य के मूल्यांकन के एक प्रमुख मानदण्ड के रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'लोकमंगल' की प्रतिष्ठा की। जिसका आधार आचार्य शुक्ल के समक्ष एकदम स्पष्ट था। सर्वप्रथम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह निरूपित किया कि साहित्य या काव्य का प्रयोजन इसी लोक के भीतर है और उसका लक्ष्य मनुष्य का हृदय है। आचार्य शुक्ल ने कहा कि- "मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है। उसका अपनी सत्ता का ज्ञान तक लोकबद्ध है। लोक के भीतर ही कविता क्या किसी कला का प्रयोजन और विकास होता है।"1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार एक की अनुभूति दूसरे की हो सके इसके लिए उसे 'लोक-सामान्य-भावभूमि' पर प्रतिष्ठित करना होगा। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि- "सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान

हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक-हृदय में लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है।"2 अतः इस प्रकार हम देखते हैं कि वे 'रस' को प्राचीन या मध्यकालीन आचार्यों के अर्थ में नहीं स्वीकार करते हैं, क्योंकि वे 'लोक-दशा' में लीन होने को ही 'रसदशा' कहते हैं। आचार्य शुक्ल के द्वारा यह 'रस' की आधुनिक व्याख्या है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पहली बार पात्रों के चरित्र-चित्रण का विश्लेषण उनकी 'अन्तः प्रवृत्तियों' के आधार पर किया। इस प्रकार पहली बार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'रस-निष्पत्ति' को काव्य का लक्षण नहीं बल्कि उसे 'लोक-हृदय' और 'लोक-मंगल' से जोड़कर नवीन व्याख्या की। डॉ रामविलास शर्मा का भी यही कहना है कि- "प्राचीन रसवादियों से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह महत्वपूर्ण भेद है।"3 श्रद्धा, भक्ति, क्रोध, प्रेम आदि पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वतंत्र रूप से भी निबन्ध लिखे हैं। पहले के काव्य में श्रृंगार या वीर रसों की ही प्रधानता प्रमुख रूप से दिखाई देती है। परन्तु पहली बार आचार्य शुक्ल हमें इस तथ्य से अवगत कराते हैं कि 'तुलसी-काव्य' में मानव-जीवन के समग्र रसों का संयमित रूप से उल्लेख मिलता है।

भक्त कवियों का मूलमंत्र प्रेम था। तुलसी भी सबसे अधिक इसी प्रेम के कवि थे। आचार्य शुक्ल ने इस भाव को अच्छी तरह पहचाना और समझा था। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं- "शुक्ल जी ने तुलसी के इस प्रेम को पहचाना, उसे सराहा, उसे केशव, बिहारी के 'प्रेम' से एकदम भिन्न माना, यही उन्हें हिन्दी का महान् आलोचक बनाता है, तुलसी में वेद-शास्त्रियों की व्यवस्था ढूँढ़ना नहीं।"4 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की तुलसी संबंधी आलोचना दो स्थानों पर ही अपने समग्र रूप में हमें मिलती है। एक उनके इतिहास में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'। दूसरी उनकी पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास' में। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पहली बार 'गोस्वामी तुलसीदास' पुस्तक में तुलसी के भक्ति संबंधी विचारों का गहराई से अध्ययन किया और पाया कि उनकी 'भक्ति का स्वरूप' बड़ा व्यापक और लौकिक था। आचार्य शुक्ल ने तुलसीदास की भक्तिधारा को वैष्णव भक्ति से जोड़कर देखते हुए उसमें 'आर्यधर्म' का प्रधान लक्षण खोजा और पाया कि तुलसी की भक्ति 'भारतीय आर्यधर्म' की परम्परा से जुड़ती है। डॉ.रामविलास शर्मा ने आगे चलकर तुलसी भक्ति को वैष्णव भक्ति से मिलाकर गहराई से देखने समझने की कोशिश की और नवीन तुलसी-सौन्दर्य से भी हमें अवगत कराते हैं। यह सत्य है कि डॉ.शर्मा, डॉ.त्रिपाठी और डॉ.शिव कुमार मिश्र जहां आचार्य शुक्ल की तुलसी संबंधी आलोचना की प्रशंसा करते हैं बल्कि उनके विवादित प्रसंगों का सरलीकरण भी करते हुए चलते हैं। वहीं, दूसरी तरफ रांगेय राद्यव और मुक्तिबोध उन-विवादित प्रसंगों को उजागर करते हैं, बल्कि कई प्रश्नों को खड़ा भी करते हैं, जिनका जवाब आज भी प्रगतिशील आलोचकों के पास नहीं है।

आचार्य शुक्ल जी की तुलसी संबंधी समीक्षा का महत्व बतलाते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना द्वारा यह संभव हुआ कि पाठकों ने तुलसी के काव्योत्कर्ष को केवल महसूस ही नहीं किया

बल्कि समझने भी लगे। उन्होंने तुलसी के काव्य को अपने युगबोध और युग की भाषा में व्याख्यायित किया। इस प्रकार तुलसी को आधुनिक जीवन के लिए संदर्भवान बनाया। वे लोकप्रिय पहले थे शुक्ल जी ने उन्हें महान कवि के रूप में सामने लाए।"5 अतः स्पष्ट है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने न केवल तुलसीदास को मध्यकाल में उचित स्थान दिलाया बल्कि आधुनिक काल में भी 'हिन्दी साहित्य' में एक सर्वप्रमुख स्थान सुनिश्चित करवाया। परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मध्यकाल के ऐतिहासिक और उसके आर्थिक पक्ष को गहराई से समझने में असफल रहे। मार्क्सवादी आलोचक डॉ.रामविलास शर्मा, डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, शिव कुमार मिश्र इत्यादि भी आचार्य शुक्ल की तुलसीदास संबंधी आलोचना का पुनर्मूल्यांकन ही करते हैं। विशुद्ध रूप से मार्क्सवादी दृष्टिकोण को उन्होंने नहीं अपनाया है। फिर भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के संदर्भ में डॉ.रामविलास शर्मा, डॉ.विश्वनाथ त्रिपाठी, शिव कुमार मिश्र इत्यादि आलोचकों की तुलसीदास संबंधी आलोचना का मूल्यांकन करना आवश्यक है।

गोस्वामी तुलसीदास और प्रगतिशील आलोचना

डॉ.रामविलास शर्मा न केवल हिन्दी साहित्य के लिए वरन् भारतीय समाज की व्याख्या के लिए असाधारण महत्व रखते हैं। भारतीय परम्परा को पहचानने, परम्परा के महत्वपूर्ण कृतित्व को आगे बढ़ाने में और इसी संदर्भ में मार्क्सवादी दृष्टि से 'तुलसी-साहित्य' का पुनर्मूल्यांकन करने में डॉ. रामविलास शर्मा का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जो आलोचक वर्तमान को व्याख्यायित करते समय अपनी प्राचीन परम्परा को पूरी तरह खारिज करके दूसरी परम्परा की खोज में अपने समय की व्याख्या करते हैं। वह पूरी तरह हिन्दी साहित्य को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नहीं समझ पाते। ऐसी स्थिति में डॉ.रामविलास शर्मा का 'परंपरा का मूल्यांकन' करना कितना महत्वपूर्ण है इसे सब भली-भांति समझ सकते हैं। डॉ.रामविलास शर्मा के मत से- "इतिहास के ज्ञान से ही ऐतिहासिक भौतिकवाद का विकास होता है, साहित्य की परंपरा के ज्ञान से ही प्रगतिशील आलोचना का विकास होता है, ऐतिहासिक भौतिकवाद के ज्ञान से समाज में व्यापक परिवर्तन किये जा सकते हैं, और नई समाज-व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है। प्रगतिशील आलोचना के ज्ञान से साहित्य की धारा मोड़ी जा सकती है। और नये प्रगतिशील साहित्य का निर्माण किया जा सकता है।"6 इस प्रकार डॉ.रामविलास शर्मा 'समाज-व्यवस्था' के निर्माण में अपनी प्रगतिशील सोच और मार्क्सवादी आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास अपनी प्राचीन भारतीय सभ्यता या परंपरा से प्राप्त करते हैं, परन्तु वे आलोचक जो भारतीय संस्कृति, भाषा, सभ्यता को प्राचीन काल से गहराई में जाकर नहीं समझते। वे डॉ.शर्मा के महत्व को भी नहीं समझ पाते। डॉ.रामविलास शर्मा के अनुसार भक्ति काव्य प्रगतिशील काव्य है जो जनता के दुःख-दर्द और हर्ष-उल्लास को अभिव्यक्त करता है। वह जातीय संस्कृति और जातीय विरासत की रक्षा करने वाला साहित्य है। इसलिए वह गोस्वामी तुलसीदास को जातीय कवि कहकर पुकारते हैं। शर्मा जी के अनुसार 'प्रगतिशील साहित्य जनता की तरफदारी करने

वाला साहित्य है, इसलिए वह उसकी जातीय विरासत, उसकी साहित्यिक परम्पराओं की रक्षा करने के लिए भी लड़ता है। साम्राज्यवाद न सिर्फ जनता की स्वाधीनता का अपहरण करता है, उसके जनवादी अधिकारों को कुचलता है बल्कि उसकी जातीय संस्कृति, उसके राष्ट्रीय अभियान उसके पूर्व पुरुषों के अर्जित ज्ञान को भी झुठलाता है और दबाता है। इसलिए जनता की जातीय संस्कृति और रक्षा के विकास के लिए संघर्ष उनकी स्वाधीनता और जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष का अभिन्न अंग हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने उम्र भर अपनी जातीय संस्कृति और जातीय विरासत का बखान किया और उसकी रक्षा के लिए हमेशा संघर्षरत् रहे। आचार्य द्विवेदी ने तुलसी को 'समन्वयवादी' कहा, और उनके दार्शनिक विचारों की बात की। वहीं दूसरी तरफ 'तुलसी' संदर्भ में शिवदान सिंह चैहान, रांगेय राघव, मुक्तिबोध उन्हें सामन्त हितैषी, 'ब्राह्मणवादी सोच के' इत्यादि कहते हैं। डॉ.रामविलास शर्मा 'तुलसीदास' के काव्य और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को इन अतिवादों से मुक्त कर उन्हें वैष्णव भक्ति की परम्परा से जोड़, उनके काव्य में किसान-जीवन, किसान-चेतना की बात करते हैं। जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। डॉ.जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन और प्रो. उदयभानु सिंह के समान डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी भी 'तुलसी-साहित्य' को समन्वयकारी घोषित करते हुए कहते हैं कि "भारतवर्ष का 'लोक-नायक' वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, आचार-निष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं।"7 आगे उन्होंने कहा है कि- "बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसी भी समन्वयकारी थे। वे स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे।"8 डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी आलोचनात्मक दृष्टि से 'तुलसी-साहित्य' का अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि- "तुलसी के समन्वय का वास्तविक अर्थ था कुछ झुकना, और दूसरों को झुकने के लिए बाध्य करना। तुलसीदास को ऐसा करना पड़ा है। यह करने के लिए जिस असामान्य दक्षता की जरूरत थी वह उनमें थी।"9 अतः यहां 'कुछ झुकने' का अर्थ था कि तुलसी के समय निम्न-वर्ग अर्थात् शूद्रों ने समाज में समान अधिकार के लिए उच्च-वर्ण ब्राह्मणों से विद्रोह किया। इस विद्रोह को भक्ति-आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। यह विद्रोह इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि देखते ही देखते यह उत्तरी भारत के कई छोटे-छोटे इलाकों में फैल गया। अतः इस विद्रोहों को शान्त करने के लिए स्वाभाविक था कि उन्हें कुछ अधिकार दिए जाएँ। इसलिए उन्हें धार्मिक क्षेत्र में अधिकार देने के लिए, डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- उस ब्राह्मण-वर्ग को 'कुछ-झुकना' पड़ा। साथ ही डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी यह भी कहते हैं- 'कुछ दूसरों को झुकने के लिए बाध्य करना।' अतः तुलसीदास बड़ी ही चतुराई से ब्राह्मण-वर्ग को कुछ झुकने के लिए कहते हैं, और धार्मिक क्षेत्र में नरमाई से पेश आने की नसीहत देते हैं। ताकि समाज में धार्मिक और सामाजिक स्तर पर उठी उथल-पुथल कुछ कम हो जाए और समाज में 'वर्णाश्रम-व्यवस्था' कायम रहे। इसलिए सदैव ध्यान रखना चाहिए कि- "डॉ.द्विवेदी का 'लोकधर्म' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'लोकधर्म' नहीं था। उनका 'लोकधर्म' उस व्यापक जनसमूह की जाग्रत चेतना हैं जो संकीर्ण ब्राह्मण-धर्म के विरूद्ध जाती है।"10 इस दृष्टि से

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'लोकधर्म' 'वर्णाश्रम-धर्म' का पर्याय सा लगता है। जबकि डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'लोकधर्म' 'निम्न-वर्ग' की जनता का 'उदार-धर्म' है। शिवदान सिंह चौहान ने भी तुलसीदास के दार्शनिक विचारों में समन्वय की बात की है। उनके अनुसार तुलसीदास का समन्वय आदर्शवादी था, वैज्ञानिक नहीं। वे कहते हैं कि- "तुलसीदास ने यदि समन्वय किया, तो वह समन्वय तात्विक दृष्टि से मूलतः आदर्शवादी ही था, वैज्ञानिक नहीं, क्योंकि वैज्ञानिक तत्वदर्शन की प्रणाली उस समय की भारतीय चिंतनधारा का अंग न बन पाई थी। उस समय विद्रोह और प्रगति की धाराएँ भी धार्मिक आन्दोलनों और भक्ति-भावना के माध्यम से ही व्यक्त होती थीं, जिस प्रकार रूढ़ि-जर्जर हसोन्मुखी विचारधाराएं धर्म का आश्रय लेती थी।"11 अतः उस समय आर्थिक और ऐतिहासिक आधार आलोचना का स्पष्ट नहीं था। धर्म की आड़ में ही सामाजिक शोषण और सामाजिक सुधार होता था। धर्म ही सर्वोपरि था हर तरह से निर्णय लेने में। आगे शिवदान सिंह का मानना है कि- "तुलसीदास के दार्शनिक समन्वय को देखते हुए यह नहीं भूल जाना चाहिए कि तुलसी लोकमर्यादा, वर्ण-व्यवस्था, सदाचार-व्यवस्था और श्रुति-सम्मत होने का ध्यान सदा रखते हैं। चाहे वह राम की भक्ति का प्रतिपादन करें, चाहे अद्वैतवाद का, चाहे माया का निरूपण करें या जीवन का विवेचन, चाहे शिव की वंदना करें या राम की, किन्तु वह अपनी इन बातों को किसी-न-किसी रूप में याद रखते हैं। इसलिए 'हरि को भजे सो हरि का होई' और 'सियाराममय सब जग जानी, की समता पर आधारित भक्ति का वर्णन करते हुए भी शूद्र और ब्राह्मण के भेद को स्वीकार करते हैं।"12 और अन्त में वह भी स्वीकारते हैं कि- "उनका दार्शनिक समन्वयवाद, सामाजिक मर्यादाओं को वर्ण और वेद के अनुसार प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न था, जिस पर सामंती संस्कारों की छाप थी, किन्तु लोक कल्याण में उनकी आस्था उनके उदार मानववाद का परिचायक है, जिसकी व्यापक प्रेरणा से वह इतनी विभिन्नताओं का विराट समन्वय करके युग को अपने अनुकूल बनाने की महान् कला-साधना संपन्न कर सके।"13

इस प्रकार हम 'गोस्वामी तुलसीदास' के 'समन्वयवाद' का अर्थ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'कुछ स्वयं झुकना' और 'कुछ दूसरे को झुकने के लिए मजबूर करना था।" उनका 'लोकधर्म' भी 'वर्णाश्रम-व्यवस्था' पर आधारित 'लोकधर्म' था। रांगेय राघव उन्हें ब्राह्मणवादी तक कह जाते हैं और मुक्तिबोध भी उनकी कड़ी आलोचना करते हैं। वहीं दूसरी तरफ शिवदान सिंह चौहान उनके दार्शनिक विचारों के समन्वय को आदर्शवादी कहकर वैज्ञानिक कसौटी पर जाँचने परखने की कोशिश करते हैं। और पाते हैं कि वह वर्ण और वेद पर आधारित, सामंती आवरण लिए हुए लोक कल्याण का काम करने की कोशिश करते हैं। इन सभी अतिवादों और असंगतियों से डॉ.रामविलास शर्मा 'गोस्वामी तुलसीदास' और उनके आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को निकालने की कोशिश करते हैं। डॉ.शर्मा के मत से 'तुलसी की भक्ति का दृढ़ आधार है, उनका ज्ञान।' इसी कारण डॉ.शर्मा ने तुलसी संबंधी दार्शनिक विचारधारा की असंगतियों का परिहार करते हुए कहा कि- "तुलसीदास के दार्शनिक दृष्टिकोण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन से विमुख नहीं है, वह लोकोन्मुख है, वह

जीवन को सुखी और सार्थक बनाने के लिए है।"14 आगे विस्तृत रूप् से हम इसकी चर्चा करेंगे।

मार्क्सवादी आलोचक रामविलास शर्मा ने पहली बार कबीर आदि संतों को सिद्धों, नाथों से अलग करके उन्हें वैष्णव भक्ति की परम्परा में तुलसीदास के साथ जोड़ा। अतः डॉ.रामविलास शर्मा तुलसी के संदर्भ में जिस वैष्णव भक्ति की वकालत करते हैं उनके केन्द्र में 'सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं' की भावना मौजूद है। जो 'सिया राममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी' की घोषणा करते हैं। अर्थात् तुलसी जिसे सगुण और प्रत्यक्ष सत्ता कहते हैं, वह असत्य नहीं है, वह परोक्ष और निर्गुण सत्ता से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई।14 डॉ.शर्मा के मत में 'तुलसी की भक्ति का दृढ़ आधार है, उनका ज्ञान।' इसी कारण डॉ.शर्मा ने तुलसी संबंधी दार्शनिक विचारधारा की असंगतियों का परिहार करते हुए कहा है कि- "तुलसीदास के दार्शनिक दृष्टिकोण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन से विमुख नहीं है, वह लोकोन्मुख है, वह जीवन को सुखी और सार्थक बनाने के लिए हैं।"15 अतः स्पष्ट है कि तुलसीदास ने जीवनभर दुःख भोगे थे परन्तु उन्होंने अपने दुःखों से संघर्ष करना भी इसी जीवन में सीखा था, वह अपने दुःखों व पीड़ा को दूर करने के लिए किसी परोक्ष सत्ता की आस नहीं लगाते, और न ही निराश होकर मृत्यु के गीत गाते हैं। इसी कारण तुलसी जिस राम या ब्रह्म के उपासक हैं, वह परोक्ष सत्ता नहीं है। वह उनके लिए प्रकट सत्य है। साथ ही वह कहते हैं कि उनका ब्रह्म एकमात्र प्रत्यक्ष सत्ता नहीं है, बल्कि वह परोक्ष भी है। इसीलिए डॉ.शर्मा के मत से-"तुलसीदास न विशुद्ध निर्गुणवादी थे, न विशुद्ध सगुणवादी।" उनकी प्रसिद्ध उक्ति है- 'अगुन सगुन दुह ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनुपा।'16 अतः संसार को राममय जानकर सत्य मानना तथा स्वार्थ और अहंकार से मुक्त होना- यह लोकोन्मुख दृष्टिकोण है।17 यही दृष्टिकोण डॉ.शर्मा के मत से तुलसीदास का था। अतः संसार तुलसीदास के लिए सत्य है, उसके समाज के आचार-विचारों, मानव-जीवन के विविध व्यापारों का लेखा-जोखा सब इसी संसार में हैं। दुःख-दर्द भी इसी संसार में हैं, उसे संघर्ष करने की प्रेरणा भी इसी संसार से उत्पन्न है। संसार असत्य है क्षणवादियों के लिए और मायावादियों के लिए भी। तुलसीदास के लिए उनका जीवन तो ईश्वर का वरदान था। जिसे उन्होंने जीवन के हर अच्छे-बुरे पलों में पूरी आत्मीयता से जीया और मानव-जीवन पर गर्व किया, अपने देश पर गर्व किया। भारत में मानव-जीवन पाने की सार्थकता उनके लिए भगवद् भक्ति में है। अतः स्पष्ट है कि- ब्रह्म, जगत् और जीव-तीनों के प्रति तुलसी के विचारों में तारतम्य है। यह संसार ही वास्तविक जीवन है। इस संसार में रहते हुए यदि मनुष्य दुःख भोगता है या अपने दुःख-दर्द से लड़ता है तो उसका निवारण भी इसी संसार के बीच कर्म करते हुए ही संभव है। इसलिए तुलसीदास संत-समाज को तीर्थराज और रामभक्ति को गंगा के समान कहते हैं। तुलसी ने काम, क्रोध, मद, लोभ आदि विकारों से उत्पन्न कष्टों की बात कही है। साथ ही वह, डॉ.शर्मा के मत से- 'दरिद्रता' से उत्पन्न कष्टों का भी विस्तार से वर्णन करते हैं। डॉ.रामविलास शर्मा ने पहली बार तुलसी की भक्ति का आर्थिक पक्ष समझा और कहा- "शायद दरिद्रता पर जितना अकेले तुलसीदास ने लिखा

है, उतना हिन्दी के समस्त नये-पुराने कवियों ने मिलकर न लिखा होगा। दरिद्रता का दुःख ऐसा है जिसे संसार को माया कहकर मिटाया नहीं जा सकता। समुद्र के भीतर जिस भयानक अग्नि की कल्पना कवियों ने की थी, उससे भी भयानक पेट की आग है, ऐसा तुलसीदास का विचार था- "आगि बड़वागि ते बड़ी है आगि पेट की।"18 यह है तुलसी की भक्ति का आर्थिक पक्ष, जिसे डॉ.शर्मा ने खूब पहचाना और उसकी प्रशंसा की। तुलसी अपने पेट की भूख से राम भक्ति को लड़ाते हैं, अपनी बाहु पीड़ा को अपनी भक्ति से संघर्ष कराते हैं, और अन्त तक अपनी हार नहीं स्वीकारते। तुलसी की यह पीड़ा और भूख सिर्फ आत्मकेन्द्रित होकर उन्हीं तक सीमित नहीं रही थी बल्कि उसे उन्होंने एक सामाजिक आधार व दिशा दी थी। यह सामाजिक आधार उन्हें-सामंतीय उत्पीड़न से प्राप्त हुआ था। इसीलिए डॉ.रामविलास शर्मा के मत से- "तुलसी की भक्ति का सामाजिक उत्पीड़न से घनिष्ठ संबंध है। काशी में भयंकर महामारी, अकाल का वर्णन उन्होंने किया है। राम की भक्ति में स्त्रियों व समाज में नीचे समझे जाने वाले लोगों का सर्वप्रमुख स्थान है।"19 तुलसी की वैष्णव भक्ति में स्वयं तुलसी सबसे बड़ा अधम और पापी दिखते हैं। इस अधम और पापी दिखने के पीछे तुलसीदास की दैन्यता स्पष्ट रूप से झलकती है। अतः इस पाप के निवारण से ही व्यक्ति की मुक्ति संभव है। डॉ. रामविलास शर्मा ने तुलसी के संदर्भ में लिखा- तुलसी की करुणा भरत और कौशल्या के चित्रण में दिखलाई देती है। उनकी मानवीय सहानुभूति निषाद, शबरी, सीता से प्रश्न करने वाली ग्राम वधुओं के संदर्भ में दिखाई देती है। मसलन- "परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहीं अधमाई।"20 अतः डॉ. शर्मा के यहाँ- "तुलसी की भक्ति का आधार ज्ञान है। वह भक्त होने के साथ दार्शनिक कवि भी है। उनके लिए ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों हैं; ब्रह्म संसार से परे नहीं हैं, वह प्रत्यक्ष जगत् में व्याप्त है। संसार को रचने वाली शक्ति विद्या है, अविद्या नहीं; वह मनुष्य के लिए श्रेयस्करी है। राम ब्रह्म हैं तो सीता आदिशक्ति हैं, जीव ब्रह्म का ही अंश है। तुलसी का यह लोकोन्मुख दर्शन है, जिसके कारण वे संसार के विभिन्न व्यापारों का, अपने तथा अन्य मनुष्यों के दुःखों का वर्णन करतें हैं।"21 उनकी भक्ति का घनिष्ठ संबंध मानवीय सहानुभूति और करूणा से है। इसीलिए वे उसके द्वारा उच्च कोटि के मानववाद की प्रतिष्ठा करते हैं। वे अपने जीवन में भक्ति द्वारा किये जाने वाले परिवर्तन का उल्लेख करते हैं और भक्त को भगवान से भी बड़ा कहकर मनुष्य की महत्ता की घोषणा करते हैं। इसी कारण उनकी भक्ति का महत्व सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं। डॉ.रामविलास शर्मा ने 'तुलसी-साहित्य' का मूल्यांकन मार्क्सवादी दृष्टिकोण से करने की कोशिश की है। परन्तु कहीं-कहीं वह तुलसीदास का सरलीकरण करते हुए चलते हैं। विशेषकर उनके स्त्री व दलित वाले प्रश्नों पर और उनकी वर्णाश्रम व्यवस्था वाली सोच पर उनकी मार्क्सवादी आलोचना असफल होती दिखाई देती है। परन्तु तुलसीदास के संदर्भ में परंपरा का मूल्यांकन करना और भारतीय सौन्दर्य बोध से तुलसी-साहित्य को जोड़कर हमारे समक्ष प्रस्तुत करना। एक नए प्रकार का तुलसी साहित्य के संदर्भ में किया गया काम है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। उन्होंने 'तुलसी-साहित्य' में 'किसान-जीवन' और 'किसान-चेतना' की बात की है।

जिसकी खोज उन्होंने मध्यकाल की ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि से की। डॉ.रामविलास शर्मा के मत से-तुलसी साहित्य का सामाजिक महत्व परखने से पहले उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है। तुलसीदास अपने समय के एक युग द्रष्टा कवि थे। सामाजिक परिस्थितियाँ, राजनीतिक हलचलों की झलकियाँ उनके काव्य में हमें अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती हैं। 'भाषा, युगबोध और कविता' नामक पुस्तक में संकलित 'गोस्वामी तुलसीदास और मध्यकालीन भारत' निबन्ध में डॉ.रामविलास शर्मा ने संक्षिप्त रूप से मुगलों की भूमि व्यवस्था, कर-वसूली पर दृष्टि डाली है। डॉ.रामविलास शर्मा के मत से- "मुगल-साम्राज्य की आमदनी का मुख्य उद्‌गम थी- भूमि। जैसा कि अंग्रेजी इतिहासकारों ने लिखा है- भूमि से मुख्य अमनदमी होने के कारण हिन्दुस्तान में 'रवेन्यु' कहने से लोगों को 'लैंड रेवेन्यु' का ही बोध होता है। भूमि कर के आधार पर राजदरबारों की शोभा भी थी और उसी के बल पर अकबर ने गुजरात से लेकर बंगाल तक अपना राज्य-विस्तार किया था।"22 इस प्रकार वास्तव में बंगाल, बिहार, उड़ीसा की भूमि से सोना उगाया जाता था। जिस कारण मुगल-शासकों ने यहाँ बड़ी कठिन भूमि-व्यवस्था लागू की और कर-वसूली के लिए भी नए नियमों और सख्त कानून की व्यवस्था की। डॉ.रामविलास शर्मा के मत से- "मध्यकालीन भारत में मुख्य उत्पादक शक्ति किसान थे और उनके उत्पादन से लाभ उठाने वाले हिन्दु और मुगल सामंत थे। इतिहास में यह बात उल्लिखित है कि अकबर के शासन का आरम्भ होने से पहले देश में भयानक अकाल पड़ा। दो साल के युद्धों से जनता वैसे ही त्राहि-त्राहि कर रही थी। उस पर महामारी का भी प्रकोप हुआ। गोस्वामी तुलसीदास को अपने जीवन के अन्तिम दिनों में फिर इस महामारी का सामना करना पड़ा।"23 डॉ.शर्मा के मत से- "इतिहासकारों का यह कहना शाहजहां के समय में किसानों की बुरी दशा हो गई। किसान जमीन छोड़-छोड़कर भागने लगे और औरंगजेब को यह आज्ञा निकालनी पड़ी कि अगर कहने से किसान जमीन न जोते तो उन्हें कोड़ों से पिटवाकर खेत जुतवायें जायें।"24 इस प्रकार डॉ.रामविलास शर्मा अन्त में यह निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं- "उस समय का मुख्य संघर्ष सामंत और किसानों के बीच था। ज्यों-ज्यों हम औरंगजेब की ओर बढ़ते हैं, त्यों-त्यों संघर्ष तीव्र होता जाता है। अकबर से पहले विभिन्न युद्धों के कारण उस पर पर्दा पड़ा रहा। दूसरी-दूसरी समस्याओं से लोग उलझे रहे। इसलिए हम किसी मध्यकालीन कवि से यह आशा नहीं कर सकते कि वह इस वर्ग-संघर्ष का स्पष्ट चित्रण करेगा, वह राजाओं और सामन्तों के विरूद्ध किसानों के राज्य की मांग करेगा। किसी-न-किसी रूप में उस समय के महान साहित्यिकों की रचनाओं में उसकी छाया मिलेगी ही।"25

उपर्युक्त कथन के अनुसार हम कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में किसान भक्ति-आन्दोलन में दाखिल होता है, और तुलसीदास भक्ति-आन्दोलन के प्रतिनिधि कवियों में से थे। उनके काव्य में अकाल, भूमखरी, जनता के दुःख-दर्द, शासन की अव्यवस्था, साथ ही सांस्कृतिक मान्यताएं, परम्पराएँ, रीति-रिवाज आदि के माध्यम से किसान-जीवन आदि से अन्त तक दिखलाई देता है। डॉ रामविलास शर्मा के मत से- "बिना अपनी रूपरेखा स्पष्ट किये हुए भी यह किसान-चेतना

विद्यमान थी। किसी न किसी रूप में उस समय के महान् साहित्यिकों की रचनाओं में उसकी छाया मिलेगी ही। तुलसी जी ने भी 'कवितावली' में कहा है- "खेति न किसान को भिखारी को न भीख बलि बनिज को बनिज न चाकर को चाकरी।"26 डॉ.शर्मा के अनुसार इस पंक्तियों में तुलसीदास की भौतिक जागरूकता का परिचय मिलता है। आर्थिक दुर्दशा का कितना जीवन्त उदाहरण है। इसी तरह 'तुलसी-साहित्य' में किसान-चेतना अपने संपूर्ण रूप में आदि से अन्त तक विद्यमान है, कहीं प्रत्यक्ष, तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप में, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है- "गोस्वामी जी ने कलिकाल के वर्णन में। अपने समय का ही चित्रण किया है- "कलि बारहि बार दुकाल परै" आदि पंक्तियाँ, "कल्पना-लोक का चित्रण नहीं करती। उनका तथ्य तुलसी के युग का तथ्य है, और इतिहास उसका साक्षी है।"27 डॉ.शर्मा के मतानुसार- "तुलसीदास की वाणी मूलतः कृषक जनता की वाणी है। यह वाणी अप्रत्यक्ष रूप से विनयपत्रिका में अपनी अपार वेदना से हृदय को द्रवित कर देती है।"28 विनय पत्रिका में कलिकाल का त्रासद रूपक बहुत बड़ा हिस्सा घेरता है। दारिद्रय दुःख की बात 'मानस' और 'कवितावली' में कही गई है, और विनयपत्रिका में भी। इसी संदर्भ में आलोचक रमेश कुन्तल मेघ के शब्द हैं- "जब वे समाज के रंगमंच को देखते-देखते तथा भोगते-भोगते यथार्थवादी व व्यावहारिक भी हो जाते हैं, तब वे कलिकाल की गर्दन मरोड़ देते हैं। अपने जीवन के परवर्ती चरण में तुलसी आध्यात्मिक और स्वप्नद्रष्टा हुए। उन्होंने अन्तः घोषित ही किया कि समाजतन्त्र का आधार 'पेट' अर्थात् आर्थिक शक्ति है।"29 डॉ.रामविलास शर्मा ने 1984 में लिखा था- "कबीर शहरी कारीगरों के, सूर पशुपालकों के, तुलसी किसानों के जीवन से जुड़े हुए हैं। दार्शनिक मतवाद की छानबीन में विवेचक इनके भौतिक परिवेश की विशेषताएँ भूल जाते हैं। किसान-जीवन के चित्र कबीर और सूर के काव्य में नहीं हैं, वे तुलसी के काव्य की विशेषताएँ हैं।"30 आगे चलकर डॉ. मैनेजर पाण्डेय सूरदास को पशुपालकों का कवि या चरवाहा संस्कृति का कवि कहने वाले डॉ.शर्मा का विरोध करते हैं, और उत्तर में 'भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य' नामक पुस्तक में 'सूर-साहित्य' को 'किसान-जीवन' से जोड़ कर दिखलाते हैं। और बदले में 'तुलसी-काव्य' में 'कृषि निरावहि चतुर किसाना' जैसी नामात्र पंक्तियां गिनाकर डॉ. रामविलास शर्मा की तुलसी संबंधी-' 'किसान-चेतना' वाली विचारधारा का पूरी तरह से खण्डन कर देते हैं।"31 डॉ मैनेजर पाण्डेय 'सूर-साहित्य' को 'किसान-जीवन' से जोड़कर देखते हैं। यह उनके शोध-कार्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। परन्तु 'तुलसी-काव्य' में 'किसान-चेतना' वाली बात को पूरी तरह से खारिज करना एक तरह से 'तुलसी-काव्य' का अति सरलीकरण अध्ययन कर देना है। जो गहन अध्ययन और उनकी सूक्ष्म दृष्टि को नहीं दर्शाता।"32 वास्तव में 'पशु पालक या चरवाह' किसान-जीवन की अपेक्षा पिछड़ी हुई संस्कृति होती है। जिसका संपूर्ण रूप से विकास 'किसान-चेतना' के रूप में डॉ.रामविलास शर्मा 'तुलसी काव्य' में देखते हैं।"33 डॉ.रामविलास शर्मा के मत से- "किसान जीवन के चित्र कबीर और सूर के काव्य में नहीं है- मेरी यह बात केवल सापेक्ष रूप से सही है। कबीर और सूर किसान-जीवन से परिचित हैं, पर इस जीवन की समग्रता तुलसी के काव्य में है। उस युग के अन्य किसी कवि में नहीं।"34 वास्तव में मध्यकाल के सभी

भक्त कवियों की रचनाओं में किसान जीवन के चिह्न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मिलेंगे ही। कबीर, सूर, तुलसी, जायसी और मीरां सभी में किसान-जीवन किसी न किसी रूप में देखने को अवश्य ही मिलता है। तुलसी जमीन से जुड़े इंसान थे। 'किसान-चेतना' उनके काव्य में शुरू से अन्त तक दिखाई देती है। उनके समय में पड़े अकाल, महामारी, दरिद्रता के चित्रण कवितावली और विनय पत्रिका में आसानी से देखे जा सकते हैं, जो 'किसान-चेतना' का आधार 'तुलसी-साहित्य' में स्पष्ट करते हैं। इसके साथ 'रामचरितमानस' में संयुक्त परिवार के आदर्श, उनके हर्ष-उल्लास, शोक-विषाद, रीति-रिवाज आदि 'किसान-जीवन' की झलकियाँ देखने को मिलती हैं। "शुभ अवसरों पर तुलसीदास 'मंगल-गान' करने वाली सुन्दर स्त्रियों को नहीं भूलते। वे 'कल-कंठी' 'कोकिल बैनी' होती है। ये स्त्रियां प्रायः गान अवश्य करती है।"35 वास्तव में ये स्त्रियां उस गांव समाज की है। जिसमें छोटी से छोटी रस्म को बड़ा महत्व दिया जाता है, उनमें परंपरा व संस्कारवश रीति-रिवाज विवाह-संस्कार, आस्थाएँ, मान्यताएँ आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। 'रामलला न हछु', 'मानस', 'जानकी-मंगल' में इन स्त्रियों को आसानी से देखा जा सकता है। राम, सीता और लक्ष्मण के अवध लौटने पर अयोध्या की नर-नारियों का हर्षोल्लास देखिए- "दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदास मंगल मूला। भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चली सिंधूर गमिनी।"36 "बहुत-सी स्त्रियां अट्टारियों पर चढ़कर पुष्पक विमान को देखने लगी। उसे देखकर वे माधुर स्वर से मंगल गान करती है। कोई शुभ अवसर आते ही स्त्रियों का गान फूट पड़ता है।"37 जबकि राम तो 14 वर्ष बाद अपने देश, अपने घर, अपने परिवार में लौटे थे। भारतीयों का कोई शुभ-समारोह स्त्रियों के कल-गान के बिना नहीं होता। गांवों में अब भी यही रीति-रिवाज हैं। गांवों में जब कोई अपना सगा-संबंधी प्रदेश जाता है, तो बहुत सारे नर-नारियाँ, उसके संगे-संबंधी उसे बहुत दूर तक विदा करते हैं, और जब कोई अपना प्रिय प्रदेश से गांव आता है, तब भी उसके सगे संबंधी अधिक-से-अधिक मात्रा में उसके स्वागत के लिए तैयार रहते हैं। "यह तुलसी की लोकवादिता थी जो उन्होंने 'ग्राम्य-गिरा' में 'रामचरित' का गुणगान किया।"38 मानव की नींव गार्हस्थिक जीवन पर रखी गई है यह ' गार्हस्थिक-जीवन' शहर का नहीं बल्कि गाँवों का है। जिसमें मानवीय रिश्ते जन्म लेते हैं। मानवीय जीवन के उतार-चढ़ाव का जो अनुभव, जिन्दगी की जो व्याप्ति, गहराई और विविधता 'मानस' में मिलती है वह हिन्दी साहित्य के किसी एक काव्य में नहीं मिलेगी। पर आज का विघटित परिवार उस सुख की कल्पना नहीं कर सकता। जहां इसका बिल्कुल अभाव है वहां परिवार भी नहीं है। इसे पूँजीवाद के मत्थे फेंककर हम अपने को मुक्त नहीं कर सकते। आज भारतीय समाज में मानवीय प्रेम, विनम्रता, सहानुभूति, दयाभाव सब कुछ धीरे-धीरे-खत्म होता जा रहा है। मानस में भाई-भाई, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, सास-बहु आदि के रिश्ते विषम परिस्थितियों में बनते-बिगड़ते हुए स्थायित्व पाते हैं। आज जब रिश्तों में बिखराव आ गया है, और व्यक्ति अकेलेपन की यातना से जूझ रहा है। संयुक्त परिवारों का बड़ी तेजी से एकल परिवारों में बदलाव होता जा रहा है। और मनुष्य अपने को अकेला और मानसिक तनाव से युक्त पाता है। ऐसी स्थिति में 'मानस' के वे रिश्ते और भी महत्वपूर्ण हो उठते हैं। पाठक उन रिश्तों को लौटा

लाने के लिए व्यग्र हो जाता है। अतः मानस के ग्रामवासियों के भोले प्रेम को देखकर हम मानवता की बुनियाद पहचानते हैं, जिसे आज पूँजीवादी सभ्यता लगभग समाप्त कर चुकी है।

निष्कर्ष

अन्त में हम कह सकते हैं कि तुलसी का साहित्य समसामयिक स्थितियों का खुला चित्रण करता है। लेखक स्वयं उन्हीं परिस्थितियों का भोक्ता भी रहा है- कलियुग वर्णन, किसान-जीवन और गाँव के आम लोगों के रीति-रिवाजों के व्यक्त होने से यह बात स्पष्ट होती है। तुलसी आज भी हमारे सामने प्रासंगिक बन पड़ते हैं तो वह इसलिए कि उन्होंने आम किसानी जीवन को अपने साहित्य में चित्रित किया है। इसीलिए उनको किसान-जीवन का कवि यदि कहा जाये तो वह गलत नहीं होगा।

सन्दर्भ

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-2, पृष्ठ-122, अनु प्रकाशन, जयपुर

2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-1, पृ. 227

3 डॉ.रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, पृ. 34, राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1956

4 डॉ.रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ. 113 विनोद पुस्तक मंदिर, प्रथम संस्करण, 1956

5 विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, पृ. 74, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1972

6 डॉ.रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 9, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नवीन संस्करण, 2009.

7 डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 101, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,

8 डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 101 प्रथम संस्करण, 1940 9 वही, पृ. 102

10 नामवर सिंह (संपा.), आलोचना, त्रैमासिक वर्ष, 1984

11 शिवदान सिंह चैहान, दार्शनिक विचार और समन्वयवाद (आलोचनात्मक लेख), पृ. 30-31

12 वही, पृ. 33 13 शिवदान सिंह चैहान, दार्शनिक विचार और समन्वयवाद (आलोचनात्मक लेख), पृ. 36

14 डॉ.रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 59.

15 डॉ.रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 57-60.

16 वही, पृ. 59

17 डॉ.रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 60.

18 वही, पृ. 51

19 डॉ.रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 65.

20 डॉ.रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 66.

21 वही, पृ. 70.

22 डॉ.रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 73

23 डॉ.रामविलास शर्मा, भाषा युगबोध और कविता, पृ. 33, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981.

24 डॉ.रामविलास शर्मा, भाषा युगबोध और कविता, पृ. 34

25 वही, पृ.35

26 डॉ.रामविलास शर्मा, भाषा युगबोध और कविता, पृ. 35.

27 वही, पृ.35

28 डॉ. रामविलास शर्मा, भाषा युगबोध और कविता, पृ. 35

29 साहित्य: स्थायी मूल्य और मूल्यांकन, पृ.39

30 अजय तिवारी (सं.), तुलसीदास: एक पुनर्मूल्यांकन, पृ. 279, आधार प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, प्र सं., 2006.

31 डॉ.रामविलास शर्मा, मार्क्सवादी और प्रगतिशील साहित्य, पृ. 344, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

32 सुधीश पचौरी (संपा.), वाक् पत्रिका, पृ. 101

33 सुधीश पचौरी (संपा.), वाक् पत्रिका, पृ. 101, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, जनवरी-मार्च, 2007

34 वही, पृ. 101

35 रामविलास शर्मा (संपा.), लोक जागरण और हिन्दी साहित्य, पृ. 74, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985.

36 विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृ. 67, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1974

37 वही, पृ. 62

38 वही, पृ. 62 39 विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृ. 62